निवेदन ।

विदेशों में श्रीयुत जेम्स एलन की पुस्तकों का कितना आदर है, इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि वहां उनकी प्रत्येक पुस्तक की कई २ हज़ार प्रतियां बिक चुकी हैं। सौभाग्य से अंग्रेज़ीदां भारतवासी भी उनके ग्रन्थों से अब लाभ उठाने लगे हैं, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दी में उनकी पुस्तकों का अभी तक अनुवाद बहुत कम हुआ है, जिससे हिन्दी जानने वाले उनकी शिक्षाओं से वंचित रहते हैं । इसी कमी को दूर करने के लिए हमने उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करना आरम्भ किया है । यह पहली पुस्तक है। इस पुस्तक में शांति-मार्ग का निरूपण किया गया है। विषय वासनारूपी नरक कुण्ड में पडे हुए मप्नुयों को यह पुस्तक वहां से निकाल कर मोक्ष मार्ग पर लगा देती है। इस के पढ़ने से पतित से पतित मनुष्य भी उच्चतम-अवस्था को प्राप्त कर सकता है। जिन लोगों का समय रात दिन सांसारिक दुःखों में व्यतीत होता है शांति-मार्ग से कोसों दूर हैं उन के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। हमें आशा है कि हिन्दी भाषा भाषी इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

दयाचन्द्र गोयलीय,
लखनऊ ।
२४—११—१५

प्रथमावृत्तिः १—१२—१६
द्वितियावृत्तिः १२— २—१८
तृतीयावृत्तिः २०—११—१९
चतुर्थावृत्ति १— १—२४

समर्पण
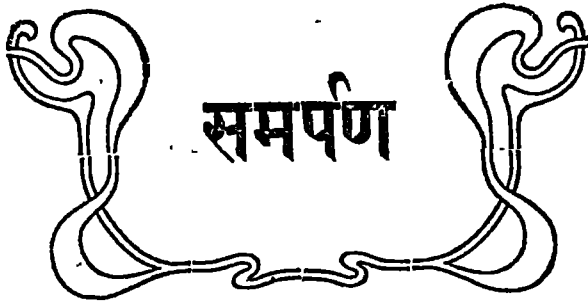
जिन आत्माओं ने वासना रूपी नरक कुण्ड से अपने को निकाल कर क्रमशः उन्नति करते हुए परम शान्ति पद को पा लिया है उन्हीं परम पवित्र विशुद्ध आत्माओं को यह पुस्तक भक्तिभाव से समर्पित है।

विषय-सूची।

शांति-मार्ग।

१—कषाय वासना।

मनुष्य के जीवन में कषाय* सब से नीची और बुरी चीज़ है। इससे नीची और बुरी और कोई प्रवृत्ति नहीं है। कषायरूपी नरककुण्ड में राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, माया, द्रोह, मात्सर्य, प्रतिकार, मिथ्या अपवाद, मिथ्या भाषण, हिंसा, चौर्य्य, अदया, संदेह, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का वास रहता है।

दुर्गुण मनुष्य के मनरूपी बन में सदा भ्रमण किया करते हैं इनके अतिरिक्त शोक, दुःख, संताप, पश्चात्ताप की भीषण भयंकर मूर्तियां भी मन पर सदा अधिकार जमाए रखती हैं। ऐसे अंधकारमय जगत् के निवासी वे अज्ञानीजन होते हैं जिन्हें शांति की पवित्रता और परमात्म-प्रकाश के परमानंद से अनभिज्ञता होती है जो सदा उनके ऊपर देदीप्यमान रहता

* कषाय से तात्पर्य यहां वासना, मनोविकार से है। अङ्गरेज़ी में Passion से जो बोध होता है, वही यहां कषाय से समझना चाहिये।

है; परन्तु उनके लिए कुछ भी लाभदायक नहीं, कारण कि उनकी दृष्टि उस पर नहीं पड़ती, किन्तु सदा भूमि की ओर भौतिक पदार्थों पर लगी रहती है।

हां, ज्ञानी पुरुष ऊपर को दृष्टि उठा कर देखते हैं। उन्हें इस कषायरूपी जगत् से संतोष नहीं होता। वे ऊपर के शांतिमय जगत् की ओर चढ़ते हैं। उसका प्रकाश और वैभव पहले तो उन्हें बहुत दूर मालूम होता है, परन्तु ज्यों ज्यों वे ऊपर को चढ़ते जाते हैं वह निकट और निकटतर होता जाता है।

कषाय (वासना) का क्षेत्र सब से नीचा है। उससे नीचा और कोई स्थान नहीं है। उसमें पड़े हुए जीवों को अनेक कष्टों को भोगना पड़ता है। जिनको अपना हित अभीष्ट है, उन्हें उसमें से निकल कर ऊपर ऊपर चढ़ना उचित है। उन्नति-मार्ग कुछ कठिन या दूर नहीं है। बहुत ही सहज और पास है। अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लो, अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लो, बस उन्नति-मार्ग मिल जाएगा। जिस मनुष्य में से स्वार्थ की गंध निकल गई है, जिसने अपनी इच्छाओं को वश में करना और अपने चंचल मन पर अधिकार प्राप्त करना शुरू कर दिया है, उसने उन्नति मार्ग को प्राप्त कर लिया है।

कषाय मनुष्य जाति की शत्रु है, शान्ति की घातक है और आनन्द की नाशक है। कषायों के वशीभूत होकर मनुष्य

नीच से नीच और अधम से अधम काम करने पर उतारू हो जाता है। कषाय दुःख का मूल है और पाप की खानि है।

मनुष्य के अंतरंग में स्वार्थ की उत्पत्ति ईश्वरीय नियमों की और परमात्म-गुणों की अज्ञानता और शान्त और पवित्र मार्ग की अनभिज्ञता के कारण होती है। कषाय अंधकार रूप है। इसकी वढ़ती वहीं पर होती है जहां ब्रह्मज्ञान का अभाव है। जहां ब्रह्मज्ञान है वहां इसका प्रवेश नहीं हो सकता। ज्ञानी पुरुष के मन से अज्ञान-अंधकार नष्ट हो जाता है। विशुद्ध-हृदय में वासना का अभाव रहता है।

कषाय प्रत्येक रूप और प्रत्येक अवस्था में दुःख, आपत्ति और अशांति का कारण है। जिस प्रकार अग्नि वड़ी वड़ी विशाल इमारतों को देखते देखते जला कर राख कर देती है, उसी प्रकार कषाय की अग्नि मनुष्यों को भस्म कर देती है और उनके कार्यों को नष्ट भ्रष्ट कर डालती है।

यदि तुम्हें शान्ति की अभिलाषा है, तो कषाय को क्षय कर दो। ज्ञानी पुरुष कषायों को शमन करते हैं, परन्तु मूर्ख जन कषायों के वशीभूत होते हैं। जिन मनुष्यों को ज्ञान और बुद्धि की चाह होती है, वे मूर्खता और अज्ञानता से दूर रहते हैं। शांति का इच्छुक शान्ति के मार्ग को ग्रहण करता है और ज्यों २ वह उस मार्ग पर वढ़ता जाता है, त्यों २ कषाय, दुःख और निराशा के अंधेरे गुप्त स्थान को पीछे छोड़ता जाता है।

ज्ञान और शांति के प्राप्त करने के लिए मनुष्य को पहिले कषाय के स्वरूप को जान लेना उचित है। जिस समय उस का वास्तविक ज्ञान हो जाएगा उसी समय से उसको दूर करना और उससे मुक्त होना मनुष्य शुरू कर देगा। देरी उसी समय तक है, जब तक मनुष्य स्वार्थ में लीन है और कषाय के आधीन है।

कषाय से केवल यही नहीं होता, कि मनुष्य क्रोधी अथवा लोभी होता है, किन्तु उसके वशीभूत हुआ मनुष्य अपने को उच्च और दूसरों को तुच्छ समझने लगता है। दूसरों में सदा अवगुण निकाला करता है और उनको स्वार्थी और मायावी बताया करता है। दूसरों की निन्दा करने से, दूसरों को स्वार्थी बनाने से मनुष्य अपने स्वार्थ को नहीं त्याग सकता। स्वार्थ से बचने के लिए अपने आप को पवित्र करना मनुष्य का काम है। दूसरों पर दोषारोपण करने से शांति-मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। शांतिमार्ग के लिए स्वार्थ-त्याग, इन्द्रिय दमन और आत्म-संयम की आवश्यक्ता है। दूसरों के स्वार्थादि अवगुणों को दूर करने की चेष्टा में लगे रहने से हम कषाय से रहित नहीं हो सकते; किन्तु अपने अवगुणों के दूर करने से हमें स्वाधीनता की प्राप्ति होती है। वही मनुष्य दूसरों पर विजय प्राप्त कर सकता है, उनको अपने वश में कर सकता है जिसने अपने ऊपर विजय प्राप्त करली है। ऐसा मनुष्य दूसरों को कषाय से अर्थात क्रोध, मान, माया, लोभ से वश में नहीं करता, किन्तु प्रेम और प्रीति से करता है।

मूर्ख जन अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा किया करते हैं, परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य अपनी निन्दा और दूसरों की प्रशंसा करते हैं। शांतिमार्ग मनुष्यों के बाहिरी जगत् में नहीं है, किन्तु विचारों के अन्तरंग संसार में है। दूसरों के कार्यों में परिवर्तन कराने से इसकी प्राप्ति नहीं होती, किन्तु इसकी प्राप्ति अपने निजी कार्यों के विशुद्ध और पवित्र बनाने से होती है।

कषाययुक्त मनुष्य प्रायः दूसरों के सुधारने में लगा रहता है, परन्तु ज्ञानी पुरुष अपने को सुधारने की धुन में रहता है। संसार को सुधारने के लिए पहले अपने आपको सुधारना आवश्यक है। अपना सुधार केवल विषय-वासनाओं के दूर करने पर ही समाप्त नहीं हो जाता, किन्तु इस के लिए उस प्रत्येक विचार का जिसमें मान का तनिक भी अंश है—तथा स्वार्थ का सर्वनाश कर देना होता है। इस से ऊंचे चढ़कर पूर्ण विशुद्धता से पहले एक प्रकार का शल्य और होता है, उसे भी दूर करना ज़रूरी है।

मनुष्य का जीवन एक प्रकार का पहाड़ है जिसकी तलहटी कषाय है और शान्ति चोटी है। कषाय को घटाता घटाता ही मनुष्य शान्ति के उच्च शिखर पर चढ़ सकता है। कषाय में शक्ति होती है, परन्तु वह शक्ति कुमार्ग की ओर लगी रहती है। उससे दुःख होता है। मन में सदैव इच्छाएं उत्पन्न हुआ करती हैं। यदि वे शुभरूप होती हैं तो सुखकर होती हैं और यदि अशुभरूप होती हैं तो दुःखकर होती हैं। इच्छाएँ एक प्रकार की जलती हुई तलवारें हैं जो स्वर्ग

के द्वार पर रक्षक का काम कर रही हैं। मूर्खों को वे जला कर भस्म कर डालती हैं और बुद्धिमानों को स्वर्ग में दाखिल कर लेती हैं।

वह मनुष्य मूर्ख है जो अपनी अज्ञानता की सीमा को नहीं जानता, जो केवल अपने विचारों का गुलाम है और जो सदा अपनी इच्छाओं के अनुसार काम करता है। इस के विपरीत वह मनुष्य बुद्धिमान् है जो अपनी अज्ञानता को जानता है, अपने विचारों की निरर्थकता को समझता है और जो अपनी कषायों का शमन करता है।

मूर्ख अज्ञानता के नीचे से नीचे कूप म गिरता जाता है, परन्तु बुद्धिमान् ज्ञान के ऊंचे से ऊंचे क्षेत्र में प्रवेश करता जाता है। मूर्ख इच्छा करता है, कष्ट उठाता है और मर जाता है; परन्तु बुद्धिमान उच्च अभिलाषा रखता है, प्रसन्न होता है और जीवित रहता है।

आत्मोन्नति का अभिलाषी वीर योधा मानसिक उन्नति करता हुआ ज्ञानप्राप्ति में लीन होकर शांति के उच्चतम शिखर की ओर दृष्टि लगाए हुए, ऊंचे ऊंचे चढ़ता जाता है और एक दिन उस अभीष्ट स्थान पर पहुंच कर परमानन्द का भोग करता है।

२—आकांक्षा।

जब मनुष्य को अपनी अज्ञानता का स्पष्ट रूप से बोध हो जाता है तब उसके मन में उन्नति की आकांक्षा उत्पन्न होती है जिस में ऋषि मुनि लीन रहते हैं। आकांक्षा से मनुष्य भूमि से स्वर्ग में, अज्ञान कूप से ज्ञान-मन्दिर में और अन्धकार से प्रकाश में प्रवेश पाता है। इसके बिना अज्ञान-अन्धकूप में पशुवत् विषयों में उन्मत्त हुआ पड़ा रहता है, जहां किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं कर सकता।

आकांक्षा और इच्छा में अन्तर है। आकांक्षा दया, प्रेम, सत्यता, पवित्रता आदि स्वर्गीय पदार्थों के लिए होती है, जिनसे आत्मिक सुख मिलता है। इच्छा सांसारिक विषय-वासनाओं और भोग-विलासों के लिए होती है जिनसे इन्द्रिय-सुख मिलता है।

जिस प्रकार पंख-रहित पक्षी नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार आकांक्षा रहित मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता और अपनी विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपनी इन्द्रियों का दास बना रहता है और विषयों के आधीन रहता है। उसके विचार स्थिर नहीं रहते। सांसारिक घटनाओं के परिवर्तन के साथ उसका मन भी चंचल और चलायमान रहता है।

जब मनुष्य आत्मोन्नति की अभिलाषा रखता है, तब समझना चाहिए कि वह अपनी वर्तमान पतित दशा से असंतुष्ट है और उस में परिवर्तन करना चाहता है। यह इस बात को भली भांति सूचित करता है कि वह विषय-वासनाओं की गाढ़ निद्रा से सचेत हो गया है और उसे वास्तिविक जीवन की सत्यता का बोध हो गया है।

आकांक्षा से सब चीज़ें संभव हो जाती हैं, उन्नति-मार्ग खुल जाता है और उच्च से उच्च पद भी, जिसकी कल्पना की जा सकती है, प्राप्त हो जाता है। और तो क्या, स्वयं मोक्ष–पद और केवल-ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसका विचार किया जा सकता हो, परन्तु जिसकी प्राप्ति न हो सकती हो।

आकांक्षा से ईश्वर-दर्शन होते हैं और आनन्द के द्वार खुल जाते हैं। जब तक मनुष्य को सांसारिक लालसाएं लगी रहती हैं। तब तक वह आत्मोन्नति की आकांक्षा नहीं कर सकता, परन्तु जब सांसारिक लालसाएं कड़ुवी और दुःख रूप मालूम होने लगती हैं, तब उसे आत्मोन्नति का ध्यान होता है। जब सांसारिक भोग विलासों से मनुष्य का जी भर जाता है, उनसे रुचि हट जाती है, तब उसे स्वर्गीय सुख और आत्मानुभव के परमानन्द की अभिलाषा होती है। जब प्रत्यक्ष में पाप से दुःख मिलने लगता है, तब पुण्य उपार्जन करने की मनुष्य में इच्छा होती है। दुःख भोगने पर सुख की अभिलाषा होती है। वही अभि–लाषा सच्ची अभिलाषा है। उसी से मनुष्य स्वर्ग–सुख और परम्परा मोक्ष आनन्द का भोग कर सकता है। आत्मोन्नति

का अभिलाषी मनुष्य उस मार्ग का अनुगामी है जिसके अन्त मशांति का विशाल और अनुपम मन्दिर है। यदि वह मार्ग में किसी जगह न रुके अथवा पीछे न हटे तो अवश्य एक दिन शान्ति-मन्दिर में प्रवेश कर लेगा। यदि वह सदा अपने मन में आत्मा के स्वरूप को विचारता रहे, मोक्ष का चिन्तवन करता रहे, तो एक न एक दिन मोक्ष-महल में पहुंच कर निजानन्द को प्राप्त कर लेगा।

(जितनी मनुष्य आकांक्षा रखता है उतना ही उसे मिलता है। मनुष्य क्या हो सकता है, इसका अनुमान उसकी आकांक्षाओं से किया जा सकता है) किसी वस्तुकी ओर मन को लगाना, मानो पहिले उस की प्राप्ति को निर्दिष्ट करना है। जिस प्रकार मनुष्य छोटी छोटी चीज़ों का ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर सकता है उसी प्रकार बड़ी बड़ी चीज़ों को प्राप्त कर सकता है। जैसे उस ने मनुष्यत्व को प्राप्त किया है वैसे ही ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। मन को ईश्वर की ओर लगाना इसी की अत्यंत आवश्यकता है।

पवित्रता और अपवित्रता क्या वस्तुएँ हैं? पवित्र विचारों का नाम पवित्रता है और अपवित्र विचारों का नाम अपवित्रता जैसे मनुष्य के विचार हैं, पवित्र अथवा अपवित्र उसी के अनुसार वह पवित्र वा अपवित्र कहलावेगा दूसरों के विचारों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। हर एक अपने अपने विचारों का उत्तरदाता है।

यदि मनुष्य यह विचार करे कि मैं दूसरों के कारण अथवा घटनाओं के कारण अथवा अपने पूर्वजों के कारण

अपवित्र हूं तो यह उस की भूल है। इस विचार से वह अपनी भूलों को दूर नहीं कर सकता, अपनी त्रुटियों को कम नहीं कर सकता, किंतु ऐसे विचारों से सारी पवित्र आकांक्षाएँ नष्ट हो जाती हैं और मनुष्य इन विषय-वासनाओं का दास बन जाता है।

जब मनुष्य इस बात का अनुभव करता है कि मुझ में जो जो त्रुटियां और अपवित्रताएँ हैं उन्हें मैं ने ही स्वयं उत्पन्न किया है और मैं ही उनका कर्त्ता और उत्तरदाता हूं, तब उसे उन पर जय प्राप्त करने की आकांक्षा होती है और किस तरह से उसे सफलता हो सकती है, वह मार्ग भी उसे प्रगट हो जाता है। इस बात का भी उसे स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि मैं कहां से आया हूं और कहां मुझे जाना है ?

विषयों में उन्मत्त हुए मनुष्य के लिए कोई मार्ग सरल और निश्चत नहीं है। उसके आगे पीछे बिल्कुल अन्धकार है। वह क्षणिक सुखों की जोह में रहता है और समझने औ ने जान के लिये तनिक भी उद्योग नहीं करता। उस का मार्ग अव्यक्त, अनवस्थित, दुःखमय और कंटकमय होता है, उस का हृदय शान्ति से कोसों दूर रहता है।

उच्च आकांक्षा रखनेवाले मनुष्य के सामने स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग खुला रहता है। उस के पीछे सांसारिक इच्छाओं के पेचदार रास्ते बने रहते हैं जिन में वह अब तक चक्कर खाता रहा है। अब वह अपने मन को ज्ञान प्राप्ति में लगाये हुए आत्म-बोध के लिए उद्योग करता है उस का मार्ग साफ़ और निष्कण्टक है और उस के हृदय में शांति और आनन्द का अनुभव होने लगा है।

सांसारिक इच्छा रखने वाले मनुष्य छोटी छोटी वस्तुओं के पाने के लिए शक्ति भर उद्योग करते हैं जो बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं और जिनका चिन्ह तक भी शेष नहीं रहता, परन्तु इसके विपरीत उच्च आकांक्षा रखने वाले मनुष्य धर्म, ज्ञान, बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाली बड़ी २ चीज़ों के हांसिल करने के लिये भरसक उद्योग करते हैं जो कभी नष्ट नहीं होतीं, किन्तु मनुष्य जाति के उत्कर्ष और सुधार के लिए सदैव स्मारक रूप रहती हैं।

जिस प्रकार एक व्यापारी निरन्तर उद्योग करते रहने से अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करता है, उसी प्रकार एक ज्ञानी पुरुष उच्च आकांक्षा और उद्योग से आत्मोन्नति में सफलता प्राप्त करता है। वह व्यापार में दक्ष होता है, यह ज्ञान में पूर्ण होता है।

जब मनुष्य अपने मन में आकांक्षा का आनन्द अनुभव करने लगता है, तब उसका मन तुरन्त शुद्ध हो जाता है और उसमें से अपवित्रता का मैल दूर हो जाता। जब तक आकांक्षा रहती है, अपवित्रता का प्रवेश नहीं हो सकता कारण कि एक ही समय में पवित्र और अपवित्र दोनों प्रकार के विचार मन में नहीं रह सकते। परन्तु आकांक्षा पहले बहुत थोड़ी देर तक रहती है। थोड़ी देर के बाद फिर मन उसी पहली हालत में आ जाता है। अतएव आकांक्षा को उत्पन्न करने के लिए निरंतर उद्योग करते रहना चाहिए।

पवित्र जीवन का प्रेमी अपने मन को प्रति दिन उच्च आकांक्षाओं से विशुद्ध करता रहता है। वह सवेरे प्रातःकाल उठता है और दृढ़ विचारों और अविश्रांत श्रम से मन को प्रबल

बनाता रहता है। उसे इस बात का ज्ञान रहता है कि मन की ऐसी दशा है कि यह एक मिनट के लिए भी ख़ाली नहीं रह सकता। यदि उच्च विचारों और पवित्र आकांक्षाओं से इसकी रक्षा नहीं की जाएगी, तो यह अवश्य नीच विचारों और कुत्सित इच्छाओं के आधीन हो जाएगा।

जिस तरह प्रति दिन के अभ्यास से सांसारिक इच्छाएँ बढ़ती जाती हैं, उसी तरह आकांक्षाएँ भी बढ़ सकती हैं। यदि इन को मन में स्थान नहीं दिया जायगा, तो इन के स्थान में कुत्सित इच्छाएँ अपना अधिकार जमा लेंगी। प्रति दिन कुछ समय के लिए एकान्त में, निर्जन स्थान में—जहां तक हो सके खुली हवा में—जाकर अपने मन को चारों तरफ़ से हटा कर सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र करना चाहिये। ऐसा करने से मन आत्मिक क्षेत्र में जय प्राप्त करने और ईश्वरीय ज्ञान के उपार्जन करने के लिए तैयार होगा।

पवित्र चीज़ों के प्राप्त करने के लिए पहले मन को अपवित्र चीज़ों से हटाना चाहिये और इस के लिए आकांक्षा की ज़रूरत है। आकांक्षा से मन वेग और निश्चय से स्वर्ग में जा सकता है, ईश्वरीय ज्ञान का अनुभव करने लगता है, ज्ञान की वृद्धि करने लगता है और विशुद्ध केवल ज्ञान के प्रकाश से अपने को सुमार्ग पर लगा सकता है।

सत्यता की आकांक्षा करना, पवित्रता की अभिलाषा रखना और आत्मिक आनन्द में लीन हो कर ऊँचे ऊँचे चढ़ना, यही ज्ञान-प्राप्ति का मार्ग है, शांति के लिए यथेष्ट उद्योग है और ईश्वरीय मार्ग का प्रारम्भ है।

३—लुभाव या लालच ।

आकांक्षा मनुष्य को स्वर्ग में अवश्य ले जा सकती है, परन्तु वहां रहने के लिए मनुष्य को अपने मन को सर्वथा स्वर्गीय पदार्थों की ओर लगा देना चाहिये; कारण कि लालच मनुष्य को अपनी ओर खींचता है, पवित्रता से अपवित्रता की ओर लेजाता है, आकांक्षा से वासना की ओर मन को आकर्पित करता है। जब तक ज्ञान में विशुद्धि और विचारों में पवित्रता नहीं हो जाती, आकांक्षा का स्थिर रहना कठिन है। आकांक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में लोभ प्रवल होता है और शत्रु समझा जाता है; परन्तु स्मरण रहे इसी अपेक्षा यह शत्रु है कि जिसको यह लुभाता है। परन्तु इस से मनुष्य की निर्वलता और अपवित्रता का पता लगता है, इस अपेक्षा इसे मनुष्य का मित्र और आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक समझना चाहिए बुराई को दूर करने और भलाई को ग्रहण करने के उद्योग में यह साथ रहता है। किसी बुराई को सर्वथा दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि वह बुराई साफ़ ज़ाहिर हो जाए और यह काम अर्थात् बुराई को ज़ाहिर कर देना लुभाव या लालच का है।

लोभ उस वासना को भड़काता है जिसको मनुष्य ने अपने वश में नहीं किया है और जब तक वह उसे वश में नहीं कर लेगा, तब तक बराबर लोभ मनुष्य को दबाता रहेगा

अपवित्रता पर लोभ का असर होता है। पवित्रता पर लोभका वश नहीं चलता।

लोभ उस समय तक आकांक्षायुक्त मनुष्य के मार्ग में बाधक रहता है जब तक कि वह ईश्वरीय ज्ञान के संसार में प्रवेश नहीं पाता। वहां पहुंच कर लोभ उसका पीछा नहीं कर सकता। जब मनुष्य में आकांक्षा उत्पन्न होने लगती है सभी से वह लुभाया जाने लगता है। आकांक्षा मनुष्य की बुराई और भलाई दोनों को प्रगट कर देती है कि जिससे मनुष्य को अपनी वास्तविक दशा का हाल मालूम हो जाए; कारण कि जब तक मनुष्य अपने को अच्छी तरह नहीं जान लेता, अपनी बुराई-भलाई को नहीं समझ लेता, तब तक वह अपने ऊपर जय नहीं प्राप्त कर सकता। जो मनुष्य विषय वासनाओं में लिप्त हो रहा है, उसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह नीचे की ओर लुभाया जा रहा है। कारण कि लुभाव ही इस बात को प्रगट कर रहा है कि वह उच्चावस्था के लिये उद्योग कर रहा है। विषय लम्पटता उसी मनुष्य में होती है जिसे अभी आकांक्षा भी उत्पन्न नहीं हुई है। उसे केवल भोग विलासों की इच्छा है और वह उन्हीं की प्राप्ति से प्रसन्न होता है। ऐसा मनुष्य नीचे की ओर नहीं लुभाया जा सकता, कारण कि वह गिरेगा क्या; अभी अपने स्थान से उठा भी नहीं है।

आकांक्षा इस बात को सूचित करती है कि मनुष्य ने कुछ उन्नति की है और इसलिये वह फिर नीचे गिर सकता है। इसी भाव का नाम जो फिर मनुष्य को ऊंचे से

नीचे उतार लाया है, लालच या लुभाव (Temptation) है। मनुष्य को लुभानेवाली चीज़ें अपवित्र विचार और इन्द्रियों के भोग विलासों की इच्छाएं होती हैं। यदि हृदय में काम की इच्छा नहीं है तो लालच का कुछ असर नहीं हो सकता। लालच मनुष्य के भीतर हैं न कि बाहर। जब तक मनुष्य को इस बात का अनुभव नहीं हो जाता, लालच का समय बढ़ता जाता है। जब तक मनुष्य बाहरी चीज़ों से यह समझ कर बचता रहता है कि लालच इन में है और अपनी अपवित्र वासनाओं को नहीं त्यागता, तब तक उसका लालच बढ़ता जाएगा और उसका पतन होता रहेगा। जब मनुष्य इस बात को स्पष्ट रूप से देख लेता है कि बुराई मेरे अन्दर हैं बाहर नहीं, तब वह उन्नति कर सकेगा उस का लालच घट जाएगा और वह बहुत शीघ्र अपनी लोभकषाय पर पूर्ण जय प्राप्त कर सकेगा।

लालच दुःखमय है, परन्तु यह नित्य नहीं है। यह केवल नीचे से ऊपर जाने का मार्ग है। जीवन की पूर्णता आनन्दमय है, दुःखमय नहीं। लोभ निर्बलता और पराजय के साथ रहता है, परन्तु मनुष्य शक्ति और विजय के लिए है। दुःख की उपस्थिति इस बात का चिन्ह है कि उन्नति की जाए। जो मनुष्य नित्यप्रति अपनी आकांक्षाओं को बढ़ाता है वह कभी यह ख्याल नहीं करता कि लोभ पर कभी विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। वह अपने ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प करता है। बुराई पर सन्तोष कर लेना अपनी पराजय को स्वीकार कर लेना है और उससे सूचित होता है कि जो युद्ध अपनी वासनाओं के विरुद्ध में किया गया था

उसे छोड़ दिया है, भलाई को त्याग दिया है और बुराई को ग्रहण कर लिया है।

जिस तरह उत्साही मनुष्य विघ्न-बाधाओं की परवा नहीं करता, किन्तु सदा उन पर विजय प्राप्त करने की धुन में लगा रहता है उसी तरह निरंतर आकांक्षा रखने वाला मनुष्य लोभ से लुभाया नहीं जाता, किन्तु इस बात की जोह में रहता है कि किस तरह से अपने मन की रक्षा करे। लुभाया वही जाता है जो सबल और सुरक्षित नहीं होता।

मनुष्य को उचित है कि लोभ लालच के भाव और अर्थ पर अच्छी तरह से विचार करे, कारण कि जब तक उसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त नहीं किया जायगा तब तक उस पर जय प्राप्त नहीं की जा सकती। जिस तरह बुद्धिमान सेनापति विरोधी दल पर आक्रमण करने से पहले शत्रु की सेना का पूरा २ हाल जानने का उद्योग करता है, उसी तरह जो मनुष्य लोभ को दूर करना चाहता है उसे इस बात पर पूर्ण रूप से विचार करना चाहिये कि किस तरह उसकी उत्पति हुई और किस तरह उसे दूर कीया जा सकता है।

मनुष्य की कषायें जितनी तीव्र होती हैं, उतना ही भयंकर उसे लालच होता है और जितना गहरा मनुष्य का स्वार्थ और अभिमान होता है, उतना ही प्रबल उसका लोभ होता है।

यदि मनुष्य सत्य के जानने का इच्छुक है तो उसे पहिले अपने आपको जानना चाहिये। यदि अपने आपको जानने का उद्योग करते सयम अपनी त्रुटियां अथवा अपने अवगुण प्रगट हों तो उनसे घबराना नहीं चाहिये, किन्तु उनका हृदय से

स्वागत करना चाहिए। उनके प्रगट होने से उसे अपना ज्ञान होगा और अपना ज्ञान होने से आत्मा को संयम और इन्द्रिय-दमन में सुभीता होगा।

जो मनुष्य अपनी भूलों और त्रुटियों को प्रगट होते नहीं देख सकता, किंतु उन्हें छिपाया चाहता है, वह सत्य-मार्ग का अनुगामी नहीं हो सकता। उसके पास लालच को पराजित करने के लिये काफ़ी सामान नहीं है। जो मनुष्य अपनी नीच प्रकृति का निर्भय होकर सामना नहीं कर सकता वह त्याग के ऊंचे, पथरीले शिखर पर नहीं चढ़ सकता।

लुभाये जानेवाले मनुष्य को यह जानना चाहिये कि वह स्वयं अपने को लुभाता है, उसके शत्रु उसके भीतर हैं। चापलूस जो उसे बहकाते हैं, ताने जो उसे दुःख देते हैं और शोले जो उसे जलाते हैं वे सब उस अज्ञानता के भीतरी क्षेत्र से निकलते हैं जिस में वह अब तक रहा है। यह जान कर उसे इस बात का निश्चय होना चाहिये कि मुझे बुराई पर विजय प्राप्त करना है।

जब मनुष्य खूब लुभाया जाए तो उसे शोक नहीं करना चाहिये, किन्तु हर्ष मनाना चाहिये क्योंकि इससे उसकी शक्ति की परीक्षा होती है और उस की निर्बलता प्रगट होती है। जो मनुष्य अपनी कमज़ोरी को ठीक ठीक जानता है और उस को मानता है, वह शक्ति के प्राप्त करने में आलस न करेगा।

मूर्खजन अपने पापों और अपनी त्रुटियों के लिए दूसरों को दोष दिया करते हैं, परन्तु सत्य के प्रेमी अपने आप को दोष

दिया करते हैं। अपने चाल-चलन की ज़िम्मेवारी मनुष्य को अपने ऊपर लेनी चाहिये और यदि कभी गिर जाए, तो यह कभी न कहना चाहिए कि यह चीज़ अथवा वह चीज़, यह मनुष्य अथवा वह मनुष्य दोष का भागी है। दूसरे लोग हमारे लिए अधिक से अधिक यह कर सकते हैं कि वे हमारी बुराई अथवा भलाई के प्रगट होने के अवसर उपस्थित कर देवें, किन्तु वे हमें अच्छे या बुरे नहीं बना सकते।

पहिले पहिल लोभ बहुत तीव्र होता है और उस के दबाने में बड़ी कठिनाई मालूम होती है, परन्तु यदि मनुष्य दृढ़ बना रहे और उसके बहकावे में न आवे, तो यह धीरे धीरे अपने आत्मिक शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेगा और अंत में उसे सत्य का ज्ञान हो जायगा। शत्रु कौन है? हमारे ही काम, स्वार्थ और अभिमान हमारे शत्रु हैं। यदि उन्हें नष्ट कर दिया जाए, तो बुराई भी नष्ट हो जाती है और भलाई पूर्ण क्रांति और प्रभा के साथ प्रगट हो जाती है।

—:o:—

४—परिणामान्तर।

वासना के नरक-कुण्ड और शांति के स्वर्गधाम के मध्य में परिणामांतर का अग्नि-कुण्ड है। यह काल्पनिक नहीं है, किन्तु मनुष्य के अंतरंग में वास्तविक है। इसकी शुद्ध और पवित्र करनेवाली अग्नि में असत्य का खोट और मैल निकल जाता है और सत्य का शुद्ध स्वर्ण रह जाता है।

जब लुभाव से मनुष्य शोक और चिन्ता में ग्रसित होजाता है, तो अपनी निर्वृत्ति के लिए असीम उद्योग करता है और इस बात को मालूम करता है कि वह अपने ही अन्तरङ्ग कारणों से बंधन में पड़ा है और बाह्य अवस्थाओं के स्थान में उसे अन्तरङ्ग अवस्थाओं से युद्ध करना उचित है। हां बाह्य बातों के विरुद्ध उद्योग करना प्रारम्भ में आवश्यक है। शुरू में यही मार्ग है, कारण कि उस समय मानसिक कारणों से सर्वथा अनभिज्ञता होती है, परन्तु स्मरण रहे कि इस से साक्षात निवृत्ति नहीं होती। इससे जो कुछ लाभ होता है वह यह है कि लुभाव का मानसिक कारण ज्ञात हो जाता है और लुभाव के मानसिक कारण के ज्ञात होने से विचारों में परिवर्तन होता है और विचारों में परिवर्तन होने से अज्ञानता के बन्धन से निवृत्ति हो जाती है। अतएव यह निवृत्ति का परम्परा कारण है। आत्मिक उन्नति के लिए यह ऐसा ही उपयोगी है जैसे कि नन्हें से बच्चे के लिए रोना और ठोकर खाना उस की बढ़ती के लिए ज़रूरी है, परन्तु जिस तरह बाल्यावस्था बीत जाने पर रोने और ठोकर खाने की ज़रूरत नहीं है, उसी तरह जब

मानसिक परिवर्तन अर्थात् परिणामों की गति का ज्ञान होजाय तब लोभ लालच में आने और बाह्य बातों के झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं है।

सच्चा बुद्धिमान मनुष्य जो लुभाव के कारण को जानता है बाह्य पदार्थों पर लुब्ध नहीं होता, किन्तु उन के लिए इच्छा तक भी नहीं करता, उस के मन में उन का ख्याल तक भी नहीं होता। उस की लुभाए जाने की ताक़त का ही नाश हो जाता है। परन्तु इस कुवासना के त्याग करने से ही इतिश्री नहीं होती, किन्तु उस परिवर्तन और संशोधन शक्ति का प्रारम्भ होता है कि जिस का यदि संतोष के साथ उपयोग किया जाए तो वह मनुष्य को आत्मिक उन्नति के उच्च और निर्मल शिखर पर पहुंचा देती है।

आत्मा में उन्नति की ओर परिवर्तन मनुष्यों और पदार्थों के प्रति मन के स्वार्थयुक्त भाव के सर्वथा बदल देने से होता है। इस से मनुष्य को बिलकुल नया अनुभव होता है। उसकी इच्छा, वासना और लालसा पैदा होते ही नष्ट हो जाती है परन्तु वह मानसिक शक्ति जिसने इस इच्छा को उत्पन्न किया, नष्ट नहीं हो जाती किन्तु उस का एक दूसरे पवित्र और उच्चतर विचार क्षेत्र में परिवर्तन हो जाता है। शक्ति का कभी विनाश नहीं होता। केवल अब वह नीचे क्षेत्र से ऊंचे क्षेत्र में कार्य करने लगती है।

ईश्वरीय जीवन के शांति मार्ग में एक विचारान्तर का क्षेत्र है जिसे स्वार्थ त्याग का प्रदेश और बलिदान की भूमि कहते हैं। यहां पुरानी वासनाओं, पुरानी इच्छाओं, पुरानी

लालसाओं और पुराने विचारों का त्याग कर दिया जाता है और उनके स्थान में पहले से अधिक सुन्दर, पवित्र, स्थाई और सन्तोपजनक विचारों की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार वर्षों से सुरक्षित रक्खे हुए बहुमूल्य आभूपणों को कुठाली में डाल कर गलाते समय कुछ दुःख सा होता है, परन्तु जब फिर से उनके नये सुन्दर आभूपण बना दिए जाते हैं, तो चित्त को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार आत्मिक उन्नति के इच्छुक कीमियागर को पहले तो अपनी पुरानी आदतों और इच्छाओं को त्यागते हुए कुछ दुःख होता है, परन्तु बाद में जब उसे मालूम होता है कि उनके स्थान में नवीन, पवित्र और आनन्द-वर्धक शक्तियां उत्पन्न हो गईं और आत्मा ने उन्नति की है, तो उसे बड़ा आनन्द होता है।

अपने मन को बुराई से भलाई की तरफ बदलते हुए मनुष्य को सच और झूठ में बिलकुल साफ़ साफ़ भेद मालूम होने लगता है और तब वह बाहरी चीज़ों से लुभाये जाने से बच जाता है। दूसरों के विचारों, शब्दों और कार्य्यों का उस पर कुछ असर नहीं पड़ता। वह जो कुछ करता है, अपने सत्य के ज्ञान से करता है। पहले वह अपनी भूलों को स्वीकार करता है और फिर नम्रतापूर्वक शांति के साथ विचार करके उन पर विजय प्राप्त करता है और उन्हें त्यागता है।

त्याग की पहली अवस्था कुछ दुःखदाई होती है, परंतु वह बहुत थोड़े समय तक रहती है। उसकी स्थिति क्षणिक होती है कारण कि दुःख का शीघ्र ही पवित्र आत्मिक सुख में परिवर्तन हो जाता है। जितनी शक्ति और बुद्धिमानी से उद्योग

किया जाता है उतनी ही स्थित दुःख की कम होती है।

जब तक मनुष्य यह ख्याल करता है कि मुझे जो दुख हो रहा है उसका कारण दूसरे लोग हैं, उनका व्यवहार मेरे प्रति ख़राब है, तब तक वह उन्नति नहीं कर सकता, उसका दुःख दूर नहीं हो सकता। परन्तु जब उसे इस बात का अनुभव हो जाता है कि अपने दुःख का कारण मैं स्वयं हूं, मेरी अन्तरंग वासनाएं मुझे दुःख दे रही हैं, तब उसका दुःख निश्चय से जाता रहता है। अज्ञानी मनुष्य इसी विचार से कि दूसरों का व्यवहार मेरे प्रति अच्छा नहीं है, नित्य अपने को दुःखी और चिन्तित करता रहता है। इसका कारण यह है कि जो बात वह दूसरों में बुरी देखता है, वह स्वयं उसमें है। दूसरों के बुरे व्यवहार का वह उन्हीं शब्दों और कार्यों में बदला देता है जिनको वह दूसरों में तो बुरा समझता है, परन्तु जिन्हें अपने लिये अच्छा जाने हुए है। ईंट का जवाब पत्थर। यदि दूसरे उसे गाली देते हैं, तो वह भी गाली देता है। यदि दूसरे उससे घृणा और द्वेष रखते हैं तो वह भी उनसे घृणा और द्वेष रखता है। यदि दूसरे क्रोध करते हैं, तो वह भी क्रोध करता है। बुराई का बदला बुराई से देता है और स्वार्थपरता का मुक़ाबला स्वार्थपरता से करता है। दूसरों के बुरे व्यवहार से मनुष्य की वासनाओं और नीच प्रकृतियों पर असर होता है। सत्य और ईश्वरीय गुणों पर उसकी आंच तक नहीं आती।

इन वासनाओं और नीच प्रकृतियों का सत्य और उच्च विचारों में परिवर्तन ही मनुष्य का अभीष्ट है। ज्ञानी मनुष्य

इस भ्रम को त्याग देता है कि दूसरों की बुराई उसके दुःख का कारण है। उसे इस बात का अनुभव और दृढ़ विश्वास हो जाता है कि मेरे दुःख का कारण मेरे अंतरङ्ग में विद्यमान है। अतएव वह अपने दुःखों और पापों के लिए दूसरों को दोष नहीं देता, किन्तु अपने ही अंतरंग और हृदय को शुद्ध करने के उद्योग में तत्पर होता है। इसी मानसिक परिवर्तन से वह अपनी स्वार्थयुक्त नीच प्रकृतियों को त्याग देता है और उनके स्थान में ईश्वरीय गुणों को ग्रहण करता है। पाप की खोटी धातु को त्याग की अग्नि में जला कर उस में से सत्य के शुद्ध और पवित्र स्वर्ण को निकाल लेता है।

ऐसे मनुष्य पर चाहे जितने बाहरी हमले हों, कितनी ही आपत्तियां आवें, वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता, स्थिर जमा रहता है। वह अपना स्वामी है, न कि सेवक। उसने अपनी कषायों और वासनाओं को मंद करके सत्य को ग्रहण कर लिया है। वह बुराई को दूर कर के भलाई में तन्मय हो गया है और सत्य असत्य को अच्छी तरह जान गया है। उसने असत्य को त्याग दिया है और सत्य को अंगीकार कर लिया है। दूसरे उसका बुरा चिंतवन करते हैं, उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं, परन्तु वह दूसरों का भला चिंतवन करता है। जितना अधिक लोग उसके साथ बुरा करते हैं उतना ही अधिक उसे भलाई करने का अवसर रहता है। मूर्ख और बुद्धिमान में, ज्ञानी और अज्ञानी में केवल इतना ही अंतर रहता है कि मूर्ख ईंट का जवाब पत्थर देता है दूसरे उसके साथ बुराई करते हैं तो वह भी उनके साथ बुराई करता है, किंतु बुद्धिमान मनुष्य यदि दूसरे उस पर क्रोध

करते हैं, तो वह उनके साथ शांति से व्यवहार करता है। यदि दूसरे उस से द्वेष करते हैं तो वह उनसे प्रीति करता है। भावार्थ, वह बुराई के बदले भलाई करता है।

संसार में मनुष्य अपने ही अशुद्ध अंतरंग के कारण अपने ऊपर दुःखों का भार उठाते हैं। जितना मनुष्य अपने हृदय को विशुद्ध करता है उतनी ही अधिक उसे शांति होती है। जितनी मानसिक शक्ति मनुष्य कषायों और कुवासनाओं के पोषण करने में नष्ट करता है, उतनी ही शक्ति का यदि सदुपयोग किया जाए, तो उच्चतम ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है।

मानसिक शक्तियां अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की होती हैं। जहां अज्ञानता हैं वहां ज्ञान की सम्भावना है। जहां दुःख की बाहुल्यता है वहां सुख विद्यमान है। जहां वासना है वहां शांति है। दुःख का न होना सुख है। पाप का उल्टा पुण्य है। भलाई का न होना बुराई है। जहां विरोध करनेवाली चीज़ं होती है वहां वह चीज़ अवश्य होती है जिसका विरोध किया जाता है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि मन को बुराई से भलाई की तरफ़ और कुवासनाओं से उच्च आकांक्षाओं की ओर लगाया जाए।

बुद्धिमान पुरुष अपने विचारों को विशुद्ध करते हैं, अपने पापों और दोषों को दूर करते हैं और सत्य को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे अपने को लोभ और कषाय के अंधकारमय क्षेत्र से निकाल कर ईश्वरीय संसार में प्रवेश पाते हैं और उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करते हैं।

५—उत्कृष्ट जीवन।

जब मनुष्य स्वभाव की अंधमय अवस्था से निकल कर परिणामांतर की प्रकाशमय अवस्था में पहुंचता है तो वह संतपदवी को प्राप्त कर लेता है। उसे अपनी आत्मा के परम और पवित्र करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, आत्मोन्नति का मार्ग मालूम हो जाता है और वह उस मार्ग का अनुगामी होकर आत्म-कल्याण में तत्पर हो जाता है परन्तु परिणामान्तर में एक समय ऐसा आता है कि जब बुराई की घटती और भलाई की बढ़ती से मनुष्य के हृदय में एक नवीन दृश्य, नवीन ज्ञान, नवीन दृष्टि की उत्पत्ति होती है। अब वह ज्ञानी माहात्मा कहलाने लगता है और मानुषी जीवन से ईश्वरीय जीवन में प्रवेश करता है। मानो यहां उसका पुनर्जन्म होता है। उसके ज्ञान-नेत्रों के सामने इस नवीन आत्मिक क्षेत्र में उसको नवीन अनुभव से और नवीन शक्ति से काम करना होता है। यह उत्कृष्ट अवस्था है। इसी को हम उत्कृष्ट वा उत्क्रांत जीवन कहते हैं।

जब पाप का स्मर्ण नहीं होता, जब शोक, दुःख, शंका और चिंता का अंत हो जाता है, जब काम, क्रोध, ईर्षा और द्वेष का मन पर अधिकार नहीं जमता, जब स्वार्थ-साधन के लिये दूसरों पर दोषारोपण करने का विचार नहीं होता, और जब संपूर्ण अवस्थाएँ कार्य कारण का भाव समझते हुए अच्छी मालूम होती हैं और मन को दुःखी नहीं करतीं, तब उत्कृष्टता प्राप्त होती है, मनुष्य की परिमित व्यक्तिता

जाती रहती है और उसके स्थान में ईश्वरीय जीवन का बोध हो जाता है। बुराई का मैदान पार हो जाता है और सर्वत्र भलाई ही भलाई दीखने लगती है।

मनुष्य के ज्ञान के विकाश को ईश्वरीय-ज्ञान नहीं कहते, यह सर्वथा नवीन होता है। यद्यपि यह ज्ञान मनुष्य के ज्ञान से ही उत्पन्न होता है, परन्तु उसका अंग नहीं होता। जिस प्रकार बीज से फूल उत्पन्न होता है परन्तु फूल बीज से ऊपर रहता है, उसी प्रकार उत्कृष्ट जीवन का पाप और शोक के नीच जीवन से प्रादुर्भाव होता है, परन्तु उसका दर्जा इस से ऊंचा होता है।

जिस प्रकार स्वार्थयुक्त जीवन का आधार वासना पर है, उसी प्रकार उत्कृष्ट जीवन का आधार शांति पर है। इस जीवन को प्राप्त करके मनुष्य अशांति से पार हो जाता है। जब पूर्ण रूप से भलाई को समझ लिया जाता है और जान लिया जाता है, केवल विचार या सम्मति रूप से नहीं, किंतु जब उसका स्वयं अनुभव कर लिया जाता है और उसे अपने में उत्पन्न कर लिया जाता है, तब पूर्ण शांति की प्राप्ति होती है और सदैव परम सुख व्याप्त रहता है।

उत्कृष्ट जीवन का आधार कषाय या वासना अथवा मनोविकारों पर नहीं होता, किंतु दृढ़ नियमों और सिद्धान्तों पर होता है। इस के स्वच्छ निर्मल आकाश में प्रत्येक पदार्थ और घटना का कारण स्पष्ट प्रगट हो जाता है अतएव शोक और चिंता के लिए कोई स्थान नहीं रहता। परन्तु जब तक मनुष्य कषायों और वासनाओं में लिप्त रहते हैं, दुःखों

के भार से दबे रहते हैं और अनेक चिन्ताओं के कारण दुःखी रहते हैं, तब तक सब से अधिक चिंता उन्हें अपने तुच्छ शरीर की रहती है। उन्हें रात दिन इसी बात का ख़याल रहता है कि किसी तरह शरीर स्वस्थ, निरोगी रहे और अनन्त काल तक सुखी रहे। सांसारिक विषय वासनाओं से उनका विछोह न हो। इसके विपरीत उत्कृष्ट जीवन में इन सब बातों का आभाव हो जाता है। स्वार्थ जाता रहता है। अपने निजी सुखों के स्थान में संपूर्ण संसार के सुखों का ख़याल आने लगता है। अपने शरीर सम्बन्धी दुःख और चिन्ताएं कर्पूरवत् उड़ जाती हैं और सारा जगत् अपना ही अपना दीखने लगता है।

वासना में केवल स्वार्थ की ही चिन्ता रहती है। इस का कोई नियम वा सिद्धान्त नहीं होता। इसका उद्देश्य केवल इन्द्रिय-पोषण होता है। ऐसे मनुष्य की इच्छा कभी पूरी नहीं होती। नित्य बढ़ती रहती है। कभी धन की इच्छा होती है, कभी सन्तान की इच्छा होती है, कभी स्वास्थ की भावना होती है। यही इच्छा बढ़ते बढ़ते कभी स्वर्ग के लिये भी हो जाती है और वह इस बात की इच्छा करने लगता है कि मैं अमर हो जाऊं और अनन्त, अक्षय जीवन को प्राप्त कर लूं। यद्यपि यह इच्छा बड़ी उच्च है तथापि स्वार्थ को लिए हुए है, क्योंकि अपने सुख के प्राप्त होने और दुःख के दूर होने के लिए इच्छा है। इसमें इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग का भय रहता है। परन्तु उत्कृष्ट अवस्था में इच्छा और भय दोनों का अभाव हो जाता है। न इष्ट वियोग से दुःख होता है और न इष्ट संयोग से हर्ष होता है।

न किसी से राग होता है और न किसी से द्वेष, संपूर्ण संसार उसकी दृष्टि में समान होता है।

जिसने अपने को सर्वथा धर्म-मार्ग पर लगा दिया है, अपने विचारों को विशुद्ध और कार्यों को निष्पाप बना लिया है, उसने स्वाधीनता को प्राप्त कर लिया है, वह अज्ञान अंधकार और विनाश को पार कर गया है और प्रकाश और नित्यता में प्रविष्ट हो गया है, कारण कि उत्कृष्ट अवस्था प्रारम्भ में उच्च कोटि की सभ्यता, पश्चात् नवीन सम्यग दर्शन और तत्पश्चात् सम्यग्ज्ञान होता है और इन्हीं का नाम ईश्वरीय ज्ञान है

उत्कृष्ट मनुष्य वह है जिसने कषाय और इन्द्रियों को वशीभूत कर लिया है, बुराई का नाश कर दिया है और जो भलाई में तन्मय हो गया है। वह उस मनुष्य के समान है जिसके पहले नेत्र न थे, परंतु अब नेत्र हो गए हैं और जो पदार्थों को असली रूप में देखने लगा है।

बुराई संसार में कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं, किंतु इसका मनुष्य अनुभव करता है। यदि यह स्वतंत्र शक्ति होती, तो कोई मनुष्य इसे दूर न कर सकता। परन्तु यद्यपि शक्ति अपेक्षा यह कोई वास्तविक चीज़ नहीं है, किन्तु अनुभव और अवस्था अपेक्षा वास्तविक है, कारण कि जितने अनुभव होते हैं, वे सब वास्तविक से होते हैं। यह अज्ञानता की अवस्था है और ऐसी अवस्था में यह ज्ञान सूर्य के सामने इस तरह अदृष्ट हो जाता है जिस तरह अन्धकार सूर्योदय से जाता रहता है, अथवा बालक की अज्ञानता ज्यों ज्यों उसका ज्ञान बढ़ता रहता है त्यों त्यों दूर होती जाती है।

ज्यों ज्यों भलाई के नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं, त्यों त्यों बुराई के दुःखमय अनुभव दूर होते जाते हैं। भलाई के नवीन अनुभव कौन से हैं? पाप से मुक्ति का ज्ञान; शोक और पश्चात्ताप का अभाव, लोभ कपाय से निवृत्ति, जिन दशाओं और अवस्थाओं में पहले महान दुःख होता था, उन में परमानन्द का होना, मन को सदैव शान्त रखना, चिंता, भय और शंका, घृणा, द्वेष और शत्रुता से बचे रहना, आपत्ति के समय सन्तोष रखना, जो लोग शत्रु हैं उन के साथ भी प्रेम रखना, बुराई के बदले भलाई करना, मनुष्य के हृदय का गहरा ज्ञान रखना और उस की उत्तमता का अवलोकन करना, नैतिक कारणों और मनुष्यों के मानसिक विकाश का ज्ञान रखना और बुराई की परिमितता और निर्बलता और भलाई की उच्चता और शक्ति में प्रसन्न होना, ये सब अनुभव हैं। शान्त, बलवान और दूरदर्शी जीवन जिस में ये सब पाए जाते हैं उत्कृष्ट जीवन है। ऐसे मनुष्य की शक्तियां अपरिमित और अपार होती हैं।

उत्कृष्टता उत्कृष्ट गुण है। भलाई और बुराई दोनों साथ साथ नहीं रह सकतीं। भलाई को जानने और ग्रहण करने के पहले बुराई को त्यागना चाहिये, और जब भलाई का अच्छी तरह ज्ञान हो जाए, और भलाई व्यवहार में आने लगे, तब मन के सम्पूर्ण क्लेश और विकार स्वयमेव दूर हो जाएँगे। अच्छे आदमी को जो कुछ भुगतना पड़ता है उस के कारण उसे दुःख और चिन्ता नहीं होती, कारण कि वह उस का कारण और परिणाम जानता है और उस भलाई को जानता है जो उस के कारण उस में होनेवाली है। इस

प्रकार उसका चित्त शांत और प्रसन्न रहता है। अच्छे आदमी का चाहे शरीर बन्धन में हो, परन्तु उसका मन स्वच्छन्द रहता है। चाहे शरीर में रोग हो, परन्तु हृदय में हर्ष और आनन्द रहता है।

एक ज्ञानी महात्मा के एक शिष्य था जो बड़ा सरल और शांत स्वभावी था। कई वर्षों तक ज्ञान-प्राप्ति और अभ्यास के बाद एक दिन उसने गुरूजी से एक प्रश्न किया। गुरूजी ने प्रश्न पर कई दिन तक विचार किया, परन्तु उसका उत्तर न दे सके। तब उन्होंने शिष्य से कहा कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता हूं। क्या तुमने स्वयं इसका कोई उत्तर सोचा है? शिष्य ने कहा, हां गुरूजी, मेरी समझ में इसका यह उत्तर आता है। गुरू जी ने उत्तर सुन कर कहा, हां, तुम्हारा उत्तर ठीक है। तुमने ऐसे प्रश्न का उत्तर दिया है जिसको मैं भी हल नहीं कर सका। अब से न तो मैं तुम्हें शिक्षा दे सकता हूं और न और कोई। अब सत्य स्वयमेव तुम में प्रगट हो गया है। तुमने उस पदवी को प्राप्त कर लिया है जिसको कोई नहीं प्राप्त कर सकता। अब तुम्हारा काम दूसरों को शिक्षा देने का है। अब तुम शिष्य नहीं रहे, किन्तु गुरू हो गए हो।

उत्कृष्ट अवस्था को जो मनुष्य प्राप्त हो जाता है, अथवा जिसे ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं, वह जब अपनी पिछली अवस्था पर विचार करता है तो उसे मालूम होता है कि जो जो कष्ट और दुःख मुझे उस समय सहने पड़े वे सब मेरे गुरू थे। उन्होंने मुझे उन्नति मार्ग पर लगाया। जितना जितना मैं ने उनके स्वरूप पर विचार किया और अपने को

उनसे उभारने का उद्योग किया, वे मुझ से दूर होते हुए। जव वे मुझे पूर्ण रूप से शिक्षा दे चुके, उनका उद्देश्य पूरा हो गया और मैं उच्च और प्रकाशमय अवस्था में पहुंच गया, तो वे मुझे छोड़ कर चल दिये। कारण कि अव मैं उनके क्षेत्र से वाहर हो गया। अव मुझे उनकी शिक्षा या ताड़ना की ज़रूरत नहीं रही, अव मैं उनसे ऊंचे चढ़ गया हूं। शिष्य गुरूको नहीं पढ़ा सकता। मूर्ख वुद्धिमान को नहीं सिखला सकता, वुराई भलाई का प्रकाश नहीं कर सकती। वुराई का उपदेश अपने ही क्षेत्र में होना है, वाहर नहीं। भलाई के क्षेत्र में उसका कोई अधिकार नहीं होता।

जो पथिक सत्य मार्ग पर चल रहा है, वह कदापि पाप को ग्रहण नहीं करता। वह केवल धर्म की आज्ञा का पालन करता है परन्तु जो मनुष्य यह कह कर पाप-कर्म करने पर उतारू हो जाता है कि इससे मनुष्य वच नहीं सकता, इसपर विजय प्राप्त नहीं हो सकती, वह इस वात को स्वीकार करता है कि पाप मुझे दुःखं देने और सताने के लिए मेरा स्वामी वन रहा है न कि शिक्षा देने के लिए। धर्म का प्रेमी पाप का प्रेमी नहीं हो सकता और न वह क्षणमात्र के लिए पाप का अपने ऊपर अधिकार मान सकता है। वह धर्म का प्रकाश करता है और धर्मध्वजा को फहराता है। उसे धर्म से प्रेम है। जव मनुष्य सत्य को अपना गुरु वना लेता है तो वह असत्य को त्याग देता है और ज्यों ज्यों वह पाप और असत्य को त्यागता जाता है त्यों त्यों वह सत्य के अनुरूप होता जाता है यहां तक कि अन्त में साक्षात् सत्य रूप हो जाता है। उसके भाव, उसके शब्द और उसके कार्य सम्पूर्ण सत्यार्थ हो जाते हैं।

उत्कृष्ट जीवन का विकाश क्रमशः होता है। यद्यपि अब तक बहुत कम लोगों ने इसको प्राप्त किया है, तथापि समय पाकर एक न एक दिन सब लोगों को इसकी प्राप्ति होगी। जिस मनुष्य ने इस जीवन को प्राप्त कर लिया है वह फिर पाप-कर्म नहीं करता, शोक और चिन्ता में ग्रसित नहीं होता। उसके विचार उसके कार्य और उसका मार्ग सभी धर्मयुक्त होते हैं। उसने अपने ऊपर विजय प्राप्त कर ली है और सत्य की शरण ले ली है। पाप को उसने त्याग दिया है और धर्म को समझ लिया है। अब न तो मनुष्य उसे उपदेश दे सकते हैं और न पुस्तकें शिक्षा दे सकती हैं। अब उसका सम्बन्ध सीधा परमात्मा से है। उसी से उसे शिक्षा मिलती है।

६—परम सुख ।

जब उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त हो जाती है तो जीवन आनंदमय हो जाता है। ऐसा मनुष्य निरन्तर सुख का भोग किया करता है, और वे बाह्य दुःख और कष्ट जिनके कारण साधारण मनुष्य नित्यशः दुःखी रहते हैं, उसके सुख को उल्टा बढ़ाते हैं, कारण कि वे उस के अन्दर भलाई करने के माद्दे को और भी अधिक बढ़ा देते हैं।

उत्कृष्ट गुणों से ही उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होती है। जो सुखावस्था महात्मा ईसा को प्राप्त थी वह उन्हीं के लिए है, जो उन जैसे गुणों के धारी हैं, शांतचित्त हैं, हृदय के विशुद्ध हैं और दयावान् हैं। उत्कृष्ट गुण केवल सुख मार्ग की ओर ही लेजाने वाले नहीं हैं, किन्तु साक्षात् सुख हैं। उत्कृष्ट गुणवाले मनुष्य के लिए यह सर्वथा असंभव है कि वह दुःखी रहे। दुःख का कारण स्वार्थयुक्त बातों में पायाजाता है न कि उन बातों में जिन में स्वार्थ की आहुति दी जाती है। यह सम्भव है कि मनुष्य में गुण हों और वह दुःखी हो, परन्तु यह कदापि सम्भव नहीं कि किसी मनुष्य में ईश्वरीय गुण हों और वह दुःखी रहे। मानुषी गुणों में स्वार्थ मिला रहता है और इस कारण से दुःख की सम्भावना है, परन्तु ईश्वरीय गुणों में से स्वार्थका मैल बिलकुल निकलगया है और उस के साथ दुःख भी निकल गया है। एक उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी। सम्भव है कि किसी मनुष्य में दूसरे पर आक्रमण करने तथा अपनी रक्षा करने के लिए सिंह जैसी शक्ति और वीरता हो,

परन्तु इतनी शक्ति होने के कारण उसे सुख प्राप्त नहीं होसकता, कारण कि उस की शक्ति भी मानुषी है, परन्तु वह मनुष्य जिस में ईश्वरीय गुण हैं जिस की शक्ति ईश्वरीय है, वह कठिन से कठिन आपत्ति के समय में भी सुखी रहेगा, यहां तक कि यदि कोई उस पर आक्रमण भी करे तो भी वह शांत, सरल रहेगा। केवल उसे ही सुख की प्राप्ति नहीं होगी, किन्तु वह अपनी उत्कृष्टता और उत्तमता से अपने पर आक्रमण करनेवाले के हृदय में से भी क्रूरता के भाव को निकाल देगा।

निःसंदेह मानुषी गुणों की प्राप्ति से सत्य-मार्ग की प्राप्ति में बहुत सहारा मिलता है, परन्तु यह मार्ग बहुत दूर और ऊपर है।

इस अभिप्राय से भलाई करना कि हम को स्वर्ग मिले अथवा मोक्ष की प्राप्ति हो, यह मानुषी गुण है। इस में स्वार्थ मिला हुआ है और इस कारण यह शोक और दुःख से ख़ाली नहीं है। उत्कृष्ट गुणों में सदैव परमानंद रहता है, कोई स्वार्थयुक्त भाव नहीं होता, किन्तु मानुषी गुण अपूर्ण होते हैं। उन में स्वार्थ का खोटा मैल मिला रहता है उसे दूर करने की ज़रूरत है। ईश्वरीय गुण पूर्ण विशुद्ध होते हैं। अब प्रश्न यह है कि वे उत्कृष्ट गुण कौन से हैं जिन में परमानन्द रहता है। वे निम्न लिखित हैं:—

१.–सब से निष्पक्ष भाव रखना, पूर्ण रूप से न्याय करना किसी का पक्ष लेकर दूसरे के विरुद्ध कार्यवाही न करना।

२.–सब जीवों पर चाहे मनुष्य हो चाहे तिर्यंच, चाहे शत्रु हों चाहें मित्र, पूर्ण कृपादृष्टि रखना।

३.—प्रत्येक दशा में कठिन से कठिन आपत्ति में भी संतोप रखना।

४.—अत्यन्त नम्रता रखना, स्वार्थ को विलकुल तिलांजलि दे देना। अपनी क्रियाओं को उसी रूप से देखना जिस रूप से दूसरों की क्रियाओं को देखा जाता है।

५.—मन और शरीर को अत्यंत विशुद्ध और पवित्र रखना किसी प्रकार भी बुरे विचार को मन में स्थान न देना और उसकी कल्पना तक भी न करना।

६.—मन को सदैव शांत रखना। चाहे तुम्हारे चहुंओर कितना ही विषाद हो और कितने ही क्लेशजन्य कारण हों, परंतु उस दशा में भी तुम्हारे हृदय में अशांति न हो।

७.—मन में सदा भलाई करने का भाव रखना, बुराई का ख्यालतक भी मन में न लाना, बल्कि बुराई के बदले भलाई करना।

८.—प्राणी मात्र पर दया और करुणा करना। उनके दुःखों को दूर करना। निर्बलों और निःसहायों की सहायता करना। शत्रु तक की दुःख और निन्दा से रक्षा करना।

९.—सब जीवों के साथ अपरिमित प्रेम और सहानुभूति रखना। उनके सुख में सुखी होना और दुःख में दुःखी होना। जो जीव सुखी हैं और जिन्हें सफलता प्राप्त हो गई है उनके हर्ष में हर्षित होना और जो जीव दुःखी हैं और जिन्हें सफलता नहीं हुई, उनसे सहानुभूति रखना।

१०—सब बातों में शांति रखना। सम्पूर्ण जगत से शांति रखना। जिस प्राकृतिक नियम पर सृष्टि चल रही है, उस से अप्रसन्न न होना।

ये गुण ऐसे हैं कि जिनमें बुराई का लेश भी नहीं है, भलाई ही भलाई है। इनको प्राप्त करना ही सत्य और ईश्वरीय मार्ग को ग्रहण करना है और ये ही उन असंख्यात उद्योगों के परिणाम हैं जो सुख प्राप्ति के लिए किए जाते हैं और ये ही उस मनुष्य के लिए पुरस्कार स्वरूप हैं जो अपने ऊपर विजय प्राप्ति करता है। ये १० गुण उस मनुष्य के सिर के लिए १० हीरों से जड़ित मुकुट के समान हैं जिसने अपने को वश में कर लिया है। इन गुणों से ही एक ज्ञानी महात्मा का मन सुसज्जित रहता है। इनके ही कारण वह सदा पाप और शोक से, दुःख और संताप से, कष्ट और आपत्ति से, सुरक्षित रहता है और उस परम पवित्र आनन्द और अक्षय अनंत सुख में मग्न रहता है जिसका संसारी स्वार्थी मनुष्य अनुमान भी नहीं कर सकते।

उस ज्ञानी महात्मा ने कषाय और वासना को बिलकुल शमन कर दिया है और नित्य के लिए शांति प्राप्ति कर ली है। जिस प्रकार तूफ़ान के समय समुद्र की बड़ी २ भयंकर लहरें भी मेरु पहाड़ को अपनी टक्करों से नहीं गिरा सकतीं, उसी प्रकार उस महा ऋषि का हृदय भी कषायों और वासनाओं की आंधियों से चलायमान नहीं हो सकता जो नित्यशः उसके जीवन के किनारे पर चला करती हैं। वह सदा प्रसन्न-चित्त और शांत हृदय रहता है और अक्षय, अनंत सुख का भोग किया करता है।

७—परम शांति ।

जहां वासना है, वहां शांति नहीं । जहां शांति है वहां वासना नहीं । इसी बात को जानना पवित्र और पूर्ण कार्यों की ईश्वरीय भाषा की वर्णमाला के प्रथम अक्षर को सीखना है। कारण कि इस बात के ज्ञान से कि वासना और शांति साथ साथ नहीं रह सकतीं, मनुष्य वासना के त्याग करने और शांति के ग्रहण करने के लिए तैयार होता है।

यद्यपि हम लोग शांति के लिए चिल्लाया करते हैं, स्वर्गीय सुख के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करते हैं, परन्तु झगड़े टंटे को नहीं छोड़ते और वासाना में ग्रसित रहते हैं। यह अज्ञानता है। इश्वरीय गुण और ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञता है। इसका नाम इश्वरीय भाषा की वर्णमाला के प्रथम अक्षर को जानना नहीं है।

राग, द्वेष, शांति और दुःख दोनों हृदय में एक साथ वास नहीं कर सकते, जहां इनमें एक का अतिथिवत् स्वागत किया जाता है वहां दूसरा अजान और अपरिचित की तरह निकाल दिया जाता है। जो मनुष्य दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखता है दूसरे भी उसको घृणा की दृष्टि से देखेंगे। जो दूसरों का विरोध करता है, दूसरे भी उसका विरोध करेंगे। उसे इस बात से दुःखी नहीं होना चाहिए और न आश्चर्य करना चाहिए कि लोगों की राय एक सी नहीं है। उसे

समझना चाहिए कि मैं स्वयं अशांति फैला रहा हूं और दुख बढ़ा रहा हूं।

निःसन्देह वह मनुष्य वीर है जो दूसरे पर विजय प्राप्त करता है, परन्तु वह उससे कहीं ज्यादह वीर है और सच्चा वीर है जो अपने आपको वश में कर लेता है और अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। जिस मनुष्य ने दूसरे पर विजय प्राप्त की है, सम्भव है कि वह कभी स्वयं पराजित हो जाए, परन्तु जिस मनुष्य ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, अपने ऊपर जय प्राप्त कर ली है उसका कभी पराजय नहीं हो सकता।

अपने ऊपर विजय प्राप्त करने से ही पूर्ण और परम शांति प्राप्त होती है। मनुष्य उस समय तक इसे नहीं समझ सकता और इसको प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि वह अपने को संसार की बाह्य वस्तुओं के घोर युद्ध से घटाने और अंतस्थ वासनाओं से युद्ध करने की परम आवश्यकता को नहीं देख लेता। वह मनुष्य पहिले से परम पवित्र मार्ग पर है जिसने इस बात का अनुभव कर लिया है कि संसार का शत्रु मनुष्य के भीतर है न कि बाहर, उसके ही अशिष्ट और अपरिष्कृत विचार उसके विस्मय, अशांति और व्यग्रता के कारण है और उसकी ही अपवित्र वासनाएं उसकी तथा संसार की शांति को भंग करने वाली हैं।

यदि किसी मनुष्य ने काम, और क्रोध को, द्वेष और अहंकार को, स्वार्थ और लोभ को जीत लिया है तो उसने संसार को जीत लिया है, शांति के शत्रुओं को नष्ट कर दिया है और शांति उसको प्राप्त हो गई है। वह मनुष्य लड़ता

झगड़ता नहीं है, भौंकता वम्बाता नहीं है, किन्तु शांत और चुपचाप रहता है। उसकी शांति को कोई भंग नहीं कर सकता।

जो मनुष्य ज़ोर, दवाब से वश में किया जाता है वह दिल से वश में नहीं होता है। सम्भव है कि वह पहिले से अधिक वलवान् शत्रु हो जाए, परन्तु जो मनुष्य शांति से वश में किया जाता है वह दिल से वश में हो जाता है। वह जो पहिले शत्रु था, अव मित्र हो जाता है। ज़ोर और दवाव कषायों और वासनाओं पर असर करते हैं, परन्तु प्रेम और शांति अन्तःकरण को सुधारते हैं।

'पवित्र और वुद्धिमान मनुष्यों के हृदय में शांति होती है। यह उनके कार्यों में पाई जाती है और वे इसे अपने जीवन में उपयोग में लाते हैं। इसकी शक्ति वहुत ज्यादह होती है। जहां शारीरिक वल से काम नहीं चलता वहां यह कार्यकारी होती है, इसकी छत्रछाया में निष्पाप और धर्मात्मा मनुष्य सुखी सुरक्षित रहते हैं। स्यार्थपरता के साम्राज्य से वचने के लिए लोग इसकी शरण लेते हैं। जो लोग पराजित हो गये हैं उनके लिए यह पनाह है, जो मार्ग विचलित हो गए हैं उनके लिए सहारा है और जो लोग पवित्र हैं उन के लिए मंदिर है।

जव शांति प्राप्त हो जाती है, उसका ज्ञान हो जाता है और व्यवहार में आने लगती है, तव शोक और पश्चात्ताप, पाप और निराशा, लोभ और स्वार्थ, इच्छा और आताप भावार्थ मन के सम्पूर्ण क्लेश स्वार्थ के अन्धकूप में रह जाते हैं, उस से आगे नहीं जा सकते। जहां इन मानसिक आतापों का वास

होता है, उससे परे ईश्वरीय आनन्द के देदीप्यमान प्रदेश ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित रहते हैं और उनमें परम और पवित्र मार्ग का पथिक समय पाकर आता है। कषाय वासना की कीच से निकल कर अनेक दुर्गुणों के कंटकमय जंगलों से होता हुआ और निराशा के सूखे रेगिस्तानों को पार करता हुआ सीधा आगे बढ़ता चला जाता है। रास्ते में इधर उधर कहीं नहीं ठहरता, यहां तक कि शांति के परम पवित्र, विशाल और अनुपम मंदिर में पहुंच जाता है जहां सर्व प्रकार का सुख व्याप्त है। इस स्थान पर पहुंच कर उसकी कषाएं सर्वथा क्षय हो जाती हैं, मान और अहंकार नष्ट हो जाता है, परन्तु उसका ज्ञान और बल अनन्त हो जाता है।